ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 118-120
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

वैष्णव धर्म के सामाजिक पक्ष : एक अन्वेषण

जितेन्द्र कुमार यादव
शोध अध्येता, इतिहास अध्ययन शाला, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0) भारत

Received-14.04.2022, Revised-20.04.2022, Accepted-24.04.2022 E-mail: jkyadav1216@gmail.com

सारांशः – ***वैष्णव धर्म या वैष्णव सम्प्रदाय का प्राचीन नाम 'भागवत् धर्म' या 'पांचरात्र मत' है। इस सम्प्रदाय के प्रधान उपास्य देव वासुदेव हैं, जिन्हें छः गुणों ज्ञान, शक्ति, बल, वीर्य, ऐश्वर्य और तेज से सम्पन्न होने के कारण भगवान या 'भगवत' कहा गया है और भगवत के उपासक 'भागवत' कहे जाते हैं। इस सम्प्रदाय की पांचरात्र संज्ञा के सम्बन्ध में अनेक मत व्यक्त किये गये हैं। महाभारत' के अनुसार चार वेदों और सांख्ययोग के समावेश के कारण यह नारायणीय महोपनिषद पांचरात्र कहलाता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सूत्र की पाँच रातों में इस धर्म की व्याख्या की गयी थी, इस कारण इसका नाम पांचरात्र पड़ा। इस धर्म के नारायणीय, ऐकान्तिक और सात्वत नाम भी प्रचलित रहे हैं। यह अनुमान है कि लगभग 600 ई0पू0 जिस समय ब्राह्मण ग्रन्थों के हिंसा प्रधान यज्ञों की प्रतिक्रिया में बौद्ध–जैन सुधार–आन्दोलन हो रहे थे, उससे भी पहले से अपेक्षाकृत शान्त, किन्तु स्थिर ढंग से एक उपासना प्रधान सम्प्रदाय विकसित हो रहा था, जो आरम्भ से वृष्णि–वंशीय क्षत्रियों की सात्वत नामक जाति में सीमित था।***

कुंजीभूत शब्द– वैष्णव धर्म, वैष्णव सम्प्रदाय, भागवत् धर्म, पांचरात्र मत, उपासक, भागवत, पांचरात्र संज्ञा, सात्वत।

वैदिक परम्परा का इसने सीधा विरोध नहीं किया, प्रत्युत अपने अहिंसा प्रधान धर्म को वेद–विहित ही बताया। इस कारण कि उसकी प्रवृत्ति बौद्ध और जैन सुधार–आन्दोलनों की भांति खण्डनात्मक और प्रबल उपचारात्मक नहीं थी, इस सम्प्रदाय की वैसी धूम नहीं मची। ई0पू0 चौथी शती में पाणिनि की अष्टाध्यायी[2] के सूत्र से वासुदेव के उपासक का प्रमाण मिलता है। ई0पू0 चौथी–तीसरी शती से पहली शती तक वासुदेवोपासना के अनेक प्रमाण प्राचीन साहित्य के पुरातत्व में मिले हैं। भारत देश में धार्मिक विविधता और धार्मिक सहिष्णुता को कानून तथा समाज, दोनों द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है। भारत के पूर्ण इतिहास के दौरान धर्म का यहाँ की संस्कृति में एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। दशावतारों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण वैष्णव धर्म के सामाजिक पक्ष को आयाम प्रदान करता है। विभिन्न अवतारों का अपना सामाजिक महत्व है

मत्स्यावतार–कथा का मूल सुदूर अतीत में सरस्वती–दृषद्वती नदी–तंत्र (ब्रह्मावर्त) में हुई एक सत्य घटना है। 'नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गयी है, इसलिए वैसस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष मानना ही उचित है।..... इस मन्वन्तर के प्रवर्तक मनु हुए हैं। मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं।[3] ऐतिहासिक घटना की मूलकथा में, सरस्वती–दृषद्वती नदी–तंत्र की, कालाधीन और स्वाभाविक किन्तु अमर्यादित विनाशकारी बाढ़ में सारस्वत प्रदेश की समस्त प्रजा डूबी, भरत जन की सामूहिक आबादी डूबी, किन्तु उत्तरकालीन विकसित पौराणिक अवतार कथाओं में वेद डूबे। प्रजा अर्थात् भरतों का स्थान वेदों को मिला। ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें से कुछ को मत्स्यों ने बचा लिया अथवा जो बचे वे मत्स्यों में विलीन हो गये। इस प्रकार जनसमूह के रूप में भरतों का स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया। मत्स्यों ने वैदिकों (मनु आदि) को बचाया, इसका रूपक के आवरण में अर्थ हुआ कि मत्स्य (मत्स्य रूप विष्णु) ने वेदों को बचा लिया।[4] यह आकस्मिक अथवा अकारण नहीं कि वैदिक संस्कृति का परवर्ती केन्द्र मत्स्य जनपद भी हुआ।

कूर्मावतार में प्रजापति ने अपत्यों की सृष्टि के लिए कूर्मरूप धारण किया था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, कूर्म, पृथ्वी आदि सब लोकों का रस है। जल में सबके निमग्न रहते ही वह उनसे निकला था, जैसे रस वस्तु विशेष का सार होता है, वैसे ही कूर्म भी त्रिलोकी का सार (आत्म तत्व) है। मेरे हिसाब से कूर्म की संकल्पना इसलिए की गई है कि वह जल एंथल दोनों में समान रूप से विचरण कर सकता है। उसकी मजबूत खोल उसे सुरक्षा प्रदान करती है। इसके अलावा वह धरा का सबसे दीर्घायु प्राणी है। उसकी पीठ आकाश और पेट पृथ्वी का द्योतक है। उसकी देह मध्य में अवस्थित होने के कारण त्रिलोक रूप है।[5]

वराह शेर से भी टक्कर लेने वाला एक ताकतवर प्राणी है। वह अपने थूथन से कठोर मिट्टी भी खोद डालता है। भागवत पुराण की एक कथा के अनुसार हिरण्याक्ष सृष्टि के प्राणन का बाधक प्रतीक है। उसने पृथ्वी को चुराकर एकार्णव में छिपा दिया। वराह ने हिरण्याक्ष का वध कर पृथ्वी का उद्धार किया अर्थात् वराह ने सर्ग विकास के बाधक अथवा अवरोधक तत्व को समाप्त कर उसे गतिशील बनाया। सृष्टि–विकास अथवा उर्वरता के प्रतीक को ध्यान में रखकर ही पुराणकार ने कृषि कार्य आरम्भ करने के पूर्व वराह पूजा का विधान किया है।[6] सृष्टि–विकास का तात्पर्य वराह के अधिक बच्चे ब्याने से हैं। वराह एक ब्यात में दर्जनों बच्चा देता है।

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

हिरण्याक्ष–वध को अनावृष्टि पर वृष्टिकारक शक्तियों की विजय का रूपक माना गया है वैदिक मान्यता[7] के अनुसार वराह का सम्बन्ध कृषि विकास से है। योगेशचन्द्र राय ने पौराणिक उपाख्यान में मृग नक्षत्र को वराह स्वीकार करते हुए अवतार कथा की ज्योतिषीय व्याख्या की है।

पाश्चात्य लेखक हॉपकिन्स ने हिरण्यकशिपु को शैव धर्म का प्रतीक मानकर विष्णु के प्रति उसके द्वेष को शैव–वैष्णव संघर्ष का परिचायक माना है। भागवत पुराण[8] में हिरण्यकशिपु–वध के उपरान्त अन्य देवों के साथ रुद्र भी नृसिंह का स्तवन करते हैं। शैव–वैष्णव पान्थिक संघर्ष पूर्व मध्ययुग की वस्तु है, जबकि हिरण्यकशिपु–नृसिंह आख्यान उससे कई शताब्दियों पहले ही विकसित हो चुका था। यह आख्यान वस्तुतः वैदिक सृष्टि–विद्या का प्रतीकात्मक तायन है। पहले (वराह अवतार में) भी संकेत किया जा चुका है कि हिरण्यकशिपु बाधक प्रतीक भर है। हिरण्यकशिपु प्रतीकात्मक शब्द है, जिसका अर्थ है– 'हिरण्य' (स्वर्ण) का 'कशिपु' (चटाई अर्थात् शय्या) अर्थात् सांसारिक मायाजन्य आकर्षण जो प्रह्लाद अथवा प्रह्लाद (नित्य आनन्द रूप आत्मा) की खोज का बाधक है। ज्ञानरूप परमात्मा (विष्णु) की स्थिति मात्र माया के आकर्षण से रहित अन्तरात्मा में ही सम्भव है, जैसा प्रह्लाद के साथ हुआ है– 'शुद्धऽन्तःकरणे विष्णुस्तस्थौ ज्ञानमयोऽच्युतः।'[9] वासुदेव शरण अग्रवाल ने इसे अपार ऊर्जा समपन्न पुरुष–पशु का दैवीय प्रतीक माना है। वस्तुतः आख्यान के माध्यम से वेद विधा का उपबृंहण करना ही पुराणकार का प्रधान उद्देश्य है। इस प्रकार नरसिंह–अवतार कथा मूलतः वैदिक सृष्टि विकास की प्रतीक कथा है।

कीथ महोदय[10] विष्णु के वामनत्व के मूल में सुदृढ़ लोक विश्वास को महत्व देते हैं, जिसके अनुसार बौने प्राणी अकूत शक्ति सम्पन्न माने जाते हैं। अकूत शक्ति–सम्पन्न यक्षगण भारतीय साहित्य और भास्कर्य में वामनाकार ही स्वीकृत हुए हैं। असम्भव नहीं कि वामन के ऋग्वैदिक प्रतीक को पकड़ने की अक्षमता के कारण पश्चिमी लेखकों को वामनाकृति के सम्बन्ध में ऐसी कल्पनाएँ करनी पड़ी हों। सुवीरा जायसवाल ने अनुमान किया है कि 'यह कथा शायद बलि की उपासना के दमन की ओर संकेत करती है।' बलि की उपासना का दमन कहने की अपेक्षा मेरी दृष्टि में यह मानना संगत होगा कि ऋग्वैदिक सिद्धान्त को कथानक रूप देने के क्रम में पुराणकारों का उद्देश्य स्थानीय देवों की उपासना को विष्णु की उपासना से सम्बद्ध कर बृहत्तर आयाम देना रहा है।

भारतीय दृष्टि परशुराम को राम, कृष्ण, बुद्ध आदि की तरह ही ऐतिहासिक व्यक्ति स्वीकार करती है। महाभारत[11] में वर्णित विवरण से स्पष्ट होता है कि परशुराम द्वारा सम्पादित कार्य अतिलौकिक भले ही प्रतीत हों, पर वे अति मानवीय नहीं कहे जा सकते हैं। परशुराम–अवतार कथा का मुख्य प्रतिपाद्य इतना भर स्वीकार किया जायेगा कि ब्राह्मतेज और क्षात्रतेज के योग्य सन्तुलन से ही समाज का समुचित अभ्युदय सम्भव है। क्षात्रतेज का दुर्दान्त हो जाना समाज की शान्ति और सुख–समृद्धि के लिए बाधक है।

रामचरित्र की उदात्तता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वे विग्रहवान धर्म कहे गये हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार 'क्या यूरोप, क्या एशिया, किसी महाकाव्य का नायक इतना लोकप्रिय नहीं हुआ, जितना रामायण के राम हुए। उनके चरित्र में कुछ ऐसी विशेषता है जो केवल भारतीय जनता की हो ही नहीं, वरन् मानव मात्र की भावनाएँ व्यक्त करती हैं।' हरिवंशपुराण[12] में राम सम्बन्धी प्राचीन गाथा का रूप भी प्रापत होता है।

बलराम को विष्णु पुराण[13] एवं भागवत पुराण में अवतार माना गया है। वस्तुतः ये शक्ति के प्रतीक हैं। शक्ति और ज्ञान का समन्वय ही विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

भागवत पुराण[14] में बुद्ध को धर्म का प्रचारक कहा गया है। गरुड़ पुराण में इनको 'शान्त' कहा गया है। समाज के सम्यक् विकास के लिए हिंसा–वृत्ति को मन से निकालना अति आवश्यक है। चोरी समाज का कलंक है अतः इसका परित्याग जरूरी है। छल–प्रपंच अथवा झूठ व्यक्ति के चरित्र को कलंकित करता है अतः इससे निष्कृति के बिना विकास सम्भव नहीं। मादक पदार्थ उचित–अनुचित, करणीय–अकरणीय का विभेद समाप्त कर देता है अतः इससे मुक्ति आवश्यक है। व्यभिचार हैवानियत का प्रतीत है। अतः ए0क उन्नत समाज के लिए इसका परित्याग अति आवश्यक है। कहने का आशय यह है कि उपर्युक्त जीवन–सूत्रों को सहेजकर ही एक सभ्य समाज का निर्माण किया जा सकता है।

विष्णु का कल्कि अवतार कलयुग के मनुष्यों के लिए एक चेतावनी है कि यदि मानव पापवृत्ति को अपनाता है अधार्मिक मार्ग का अनुसरण करता है तो उसका विनाश निश्चित है। समाज के समुचित संचालन के लिए प्रेमभाव का प्रसार अति आवश्यक है। कल्कि अवतार के सन्दर्भ में कहा गया है कि जब धरा पर पाप, अत्याचार और अधर्म बढ़ जायेगा तब विष्णु इस अवतार को धारण कर, दुष्टों का संहार कर पुनः कृतयुग की स्थापना करेंगे। अपना कार्य पूरा कर वे शरीर छोड़कर स्वर्ग चले जायेंगे।[15] इस प्रकार इस अवतार के माध्यम से एक समतामूलक समाज की स्थापना पर जोर दिया गया है।

पुराणों में नारद को स्वयंभू का मानसपुत्र, संगीताचार्य, परम भगवत् भक्त एवं भगवद्गुण नायक कहा गया है।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

गीत–संगीत का अलौकिक गुण मनुष्य को पशु से विरत करता है। उसे सुख–शान्ति पहुँचाने के साथ मनुष्यत्व भी प्रदान करता है। भागवतपुराण[16] में इन्हें विष्णु का अवतार माना गया है। नर–नारायण युग्म को भागवतपुराण[17] की प्रथम अवतार सूची में चौथा और द्वितीय में छठां अवतार माना गया है। मेरे हिसाब से एक नर ही अपने सत्कर्मों से नारायण का दर्जा प्राप्त करता है। अपने सद्विचारों एवं सद्गुणों से एक मनुष्य ईश्वरत्व को प्राप्त करता है।

मत्स्यपुराण के अनुसार त्रेता युग में धर्म का चतुर्थांश नष्ट हो जाने पर दत्तात्रेय का अवतार हुआ था। इसके सामाजिक पक्ष पर विचार करते हुए हमें ऐसा प्रतीत होता है। जब–जब धरती पर अत्याचार बढ़ता है, सन्तुलन स्थापित करने हेतु प्रकृति उसका शमन करती है। यही नियम जीवन–जगत् के हर परिक्षेत्रों में लागू होता है।

भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर दैत्यों को मोहित करते हुए दैवों को अमृत पिलाया। विष्णु के मोहिनी रूप का सामाजिक सन्दर्भ ग्रहण करते हुए हम कह सकते हैं कि धर्म की रक्षा हेतु, दुष्टों के विनाश हेतु छल–कपट करना या झूठ का सहारा लेना पाप नहीं है। यदि एक झूठ से किसी का प्राण बच जाता हो अथवा न्याय का उत्थान होता हो तो उसे कभी अनुचित नहीं ठहराया जा सकता है।

निष्कर्षत– कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में धर्म विज्ञान का एक पहलू है। धर्म हमारे जीवन–सन्दर्भों को मजबूती से पकड़े हुए है। धर्म के बगैर विज्ञान और विज्ञान के बगैर धर्म अधूरा है। धर्म और विज्ञान एक–दूसरे के साथ जुड़कर ही पूर्णता प्राप्त करते है। भारतीय समाज में पीपल और तुलसी की पूजा सदियों से होती रही है। तुलसी को लोग आँगन में लगाते हैं। वैज्ञानिक सन्दर्भ में देखा जाय तो यह सबसे अधिक प्राणवायु देने वाले पौधे हैं। धर्म ही हमारे नैतिक बल को बढ़ावा देता है, परिणामस्वरूप हम सामाजिक उन्नति करते हैं। हमें केवल अपने पूजा–पाठ या संस्कारों में ही धर्म की आवश्यकता नहीं, किन्तु हमारा काम चाहे वह सामाजिक हो या व्यक्तिगत धर्म के बंधन से जकड़ा हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. महाभारत–339/11–12, भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, 1933.
2. पाणिनि–अष्टाध्यायी 4/3/98, सं० झा नरेश, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, 2014.
3. भारतीय, सुशीला – कामायनी – इतिहास और रूपक, भारतीय साहित्य प्रकाशन मेरठ, 2008, पृ0 78–82.
4. प्रसाद, कृष्ण नारायण – श्री विष्णु और उनके अवतार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ0 243.
5. शपतथ ब्राह्मण – 7/5/1/2.
6. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – 3/119/2, वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई, 1912.
7. वहीं, 3/119/2.
8. भागवत पुराण – 7/8/41.
9. विष्णु पुराण – 1/20/3, गीता प्रेस गोरखपुर, 33वाँ पुनर्मुद्रण संवत्, 2064.
10. कीथ – रिलीजन एण्ड फिलॉसफी ऑफ द वेद एण्ड उपनिषद, भाग–1, ग्रीन वुड प्रेस अमेरिका, 1971, पृ0–111.
11. महाभारत – 5/179/3, भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, 1933–36.
12. शर्मा, राम विलास – भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, खण्ड–1, पृ० 173.
13. विष्णु पुराण – 5/1/61, गीता प्रेस गोरखपुर, 33वाँ पुनर्मुद्रण संवत, 2064.
14. भागवत पुराण – 2/7/37.
15. अग्नि पुराण – 16/10, सं० बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा साहित्य सीरीज, वाराणसी, 1966.
16. भागवत पुराण – 1/3/8, गीता प्रेस गोरखपुर, 22वाँ पुनर्मुद्रण संवत्, 2056.
17. भागवत पुराण – 1/3/9.

*****